राजस्थान में लोक चित्र

*डॉ. नीरू कल्ला

राजस्थान में चित्रकला की यह परम्परा प्राचीन समय से ही विद्यमान है। 1953 ई. में प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता वी.एस.वाकणकर ने राजस्थान के कोटा में चम्बल घाटी एवं दर्रा क्षेत्र, झालावाड़ के निकट काली सिंध नदी की घाटी एवं अरावली पर्वतीय प्रदेश के माउंट आबू व ईडर क्षेत्र में चित्रित शैलाश्रयों की खोज की थी।

उदयपुर के पास आहड़ व गिलूण्ड में मिली ताम्रयुगीन सभ्यता के पुरावशेषों में मृदभांडों पर प्राकृतिक व ज्यामितीय अलंकरण प्राप्त हुए हैं।

तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने मरुप्रदेश (मारवाड़) में 7वीं शती में शृंगधर नामक चित्रकार का उल्लेख किया गया है, लेकिन उस समय के चित्र वर्तमान उपलब्ध नहीं है।

विशुद्ध राजस्थानी चित्रकला का जन्म हम 1500 ई. के आस-पास मान सकते हैं।

राजस्थानी चित्रकला की जन्मभूमि मेदपाट (मेवाड़) है, जो अजंता चित्रशैली से पूर्णतया प्रभावित है। इस चित्रकला पर प्रारम्भ में जैन शैली, गुजरात शैली और अपभ्रंश शैली का प्रभाव था, किन्तु बाद में यह मुगल चित्रकला से प्रभावित हुई।

सबसे पहले राजस्थान में चित्रकला का वैज्ञानिक विभाजन आनंद कुमार स्वामी ने राजपूत पेंटिंग्स नामक पुस्तक में सन 1916 ई. में प्रस्तुत किया। कुमार स्वामी, ओ.सी.गांगुली तथा हैवेल ने इसे 'राजपूत चित्रकला' कहा है।

राजस्थानी चित्रकला की विशेषताएं –

- लोक जीवन से जुड़ाव, भाव प्रवणता, विषय-वस्तु की विविधता, विभिन्न रंगों का संयोजन, प्राकृतिक परिवेश, देश काल से अनुरूपता आदि विशेषताओं के आधार पर राजस्थानी चित्रकला की विशिष्ट पहचान है।
- धार्मिक और सांस्कृतिक स्थलों की चित्रकला में लोक जीवन की भावनाओं की बहुलता, भक्ति और शृंगार का सजीव चित्रण तथा चटकीले व चमकदार रंगों का संयोजन विशेष रूप से दिखाई देता है।
- इस चित्र शैली में पक्षियों में मुख्यतः मोर का चित्रण हुआ है।
- राजस्थान की चित्रकला यहाँ के महलों, किलों, मंदिरों और हवेलियों में अधिक देखी जा सकती है।
- प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ नारी सौन्दर्य का सजीव चित्रण राजस्थानी चित्रकला को एक अलग पहचान देता है।

- राजस्थान में चित्रकला राजा–महाराजाओं, राजपुत्रों व सामन्तों के संरक्षण में फूली–फली है।

राजस्थानी चित्रकला शैली का वर्गीकरण –

इस चित्रकला शैली को इसकी अलग–अलग विशेषताओं व रियासतों के प्रभाव के कारण चार मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया हैं जो इसके चार स्कूल कहलाते हैं।

जिनमें अनेक शैलियाँ, उपशैलियाँ पनपी और विकसित हुई हैं तथा एक–दूसरी से प्रभावित होती रही हैं। राजस्थानी शैली के चार स्कूल निम्न प्रकार हैं –

(1) मेवाड़ स्कूल – उदयपुर शैली, चावंड शैली, नाथद्वारा शैली, देवगढ़ उपशैली, सावर उपशैली, शाहपुरा उपशैली तथा बनेड़ा, बागौर, बेंगू, केलवा आदि ठिकाणों की कला।

(2) मारवाड़ स्कूल – जोधपुर शैली, बीकानेर शैली, किशनगढ़ शैली, अजमेर शैली, नागौर शैली, सिरोही शैली, जैसलमेर शैली तथा घाणेराव, रियाँ, भीणाय, जूनियाँ आदि ठिकाणा कला।

(3) हाड़ौती स्कूल – बूंदी शैली, कोटा शैली, झालावाड़ उपशैली।

(4) ढूँढ़ाड़ स्कूल – आमेर शैली, जयपुर शैली, शेखावाटी शैली, अलवर शैली, उणियारा उपशैली।

मेवाड़ शैली

राजस्थान में चित्रकला का प्रारम्भिक और मौलिक रूप मेवाड़ शैली में मिलता है। मेवाड़ शैली के अंतर्गत पोथी ग्रंथों का अधिक चित्रण हुआ है।

1260 ई. का 'श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णी' नामक चित्रित ग्रन्थ इस शैली का प्रथम उदाहरण है जो तेजसिंह के राज्यकाल में चित्रित हुआ।

यही शैली 1423 ई. की देलवाड़ा में लिखी गई सुपासनाह चरियम पुस्तक में दिखाई देती है। डगलस बैरेट एवं बेसिल गे ने चौरपंचाशिका शैली का उदगम मेवाड़ में माना है।

महाराणा कुम्भा का काल कलाओं के उत्थान की दृष्टि से स्वर्णिम युग माना जाता है। उदयसिंह के काल में बने चित्रों में भागवत पुराण का परिजात अवतरण मेवाड़ के चित्रकार नानाराम की कृति है।

उदयपुर शैली

महाराणा अमरसिंह प्रथम के शासनकाल में चावण्ड चित्रशैली का अधिक विकास हुआ। महाराणा अमरसिंह के समय में रागमाला मेवाड़ शैली का प्रमुख ग्रन्थ है। इन चित्रों को निसरादीन नामक चित्रकार ने चित्रित किया।

मेवाड़ के राणा जगतसिंह प्रथम का काल मेवाड़ की लघु शैली का स्वर्णकाल कहा जाता है। इस काल में रसिकप्रिया, गीतगोविन्द, भागवत पुराण एवं रामायण आदि विषयों पर लघु चित्रों का निर्माण हुआ।

महाराणा जगतसिंह ने राजमहल में चितेरों की ओवरी नाम से एक चित्रशाला की स्थापना की जिसे तस्वीरा रो कारखानों कहा जाता है।

नाथद्वारा शैली

मेवाड़ शैली का दूसरा प्रमुख दौर नाथद्वारा शैली में दिखाई देता है।

नाथद्वारा में पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की भारत प्रसिद्ध प्रमुख पीठ है, जो श्रीनाथजी की भक्ति का प्रमुख केन्द्र होने के कारण मेवाड़ की चित्र परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

यह उदयपुर शैली एवं ब्रजशैली का समन्वित रूप है। इस शैली की मौलिक देन श्रीनाथजी के स्वरूप के पीछे सजावट के लिए बड़े आकार के कपड़े के पर्दे पर बनाए गए चित्र पिछवाईयों के नाम से जाने जाते है।

नाथद्वारा शैली के चित्रकारों में बाबा रामचंद्र, नारायण, चतुर्भुज, रामलिंग, चम्पालाल, घासीराम, तुलसीराम, (कमला व इलायची महिला चित्रकार) आदि के नाम भी प्रसिद्ध हैं।

देवगढ़ शैली

महाराणा जयसिंह के राज्यकाल में रावत द्वारिकादास चूंडावत ने देवगढ़ ठिकाणा 1680 ई. में स्थापित किया, इसके पश्चात् यहीं से देवगढ़ शैली का जन्म हुआ। यहाँ के सामंत सोलहवें उमराव कहलाते थे।

देवगढ़ शैली मारवाड़, जयपुर एवं मेवाड़ शैली का समन्वित रूप है। इसे सर्वप्रथम डॉ. श्रीधर अंधारे द्वारा प्रकाश में लाया गया।

इस शैली के प्रमुख चित्रकार बगता, कँवला प्रथम, कँवला द्वितीय, हरचंद, नंगा, चोखा एवं बैजनाथ हैं। इसमें पीले रंग की बहुलता रही है।

देवगढ़ शैली के भित्ति चित्र अजारा की ओवरी, मोती महल आदि में देखने को मिलते हैं।

मारवाड़ शैली

मारवाड़ क्षेत्र की चित्रकला का वैभव मूलतः जोधपुर की दरबारी शैली के रूप में देखा जा सकता है, किन्तु इसके अतिरिक्त जैसलमेर, नागौर एवं अजमेर के कुछ भागों में भी इसका व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होता है।

तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ ने सातवीं सदी में मारू देश में चित्रकार शृंगधर का उल्लेख किया है, जिसने पश्चिमी भारत में यक्ष शैली को जन्म दिया।

जोधपुर शैली

मारवाड़ में कला एवं संस्कृति को नवीन परिवेश देने का श्रेय मालदेव को जाता है। इस काल की प्रतिनिधि चित्रशैली के उदाहरण हमें चौखेलाव महल तथा चित्रित उत्तराध्ययन सूत्र से प्राप्त होते हैं।

सन 1610 ई. में लिखित एवं चित्रित भागवत मेवाड़ एवं मारवाड़ की अनेक विशेषताओं से युक्त है।

1623 ई. में कलाकार वीरजी द्वारा पाली के प्रसिद्ध वीर पुरुष विठ्ठलदास के लिए रागमाला चित्रावली चित्रित की गई।

महाराजा अभयसिंह के शासन काल में चित्रकार डालचंद को विशेष ख्याति प्राप्त हुई। इनके चित्र महाराजा अभयसिंह

नृत्य देखते हुए (1725 ई.) मेहरानगढ़ संग्रहालय, जोधपुर एवं कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित देखे जा सकते हैं।

मारवाड़ शैली में लाल, पीले रंग की बाहुल्य है, जो स्थानीय विशेषता है।

बीकानेर शैली

बीकानेर शैली का प्रादुर्भाव 16वीं सदी के अंत में माना जाता है। राव रायसिंह के समय चित्रित भागवत पुराण में इस शैली के प्रारम्भिक चित्र मिलते हैं।

इनमें उस्ता अली रजा व उस्ता हामिद रुकनुद्दीन प्रमुख थे। इन्हीं दोनों कलाकारों की कलाकृतियों से चित्रकारिता की बीकानेर शैली का उद्भव हुआ।

बीकानेर शैली का विशुद्ध रूप अनूपसिंह के शासक काल में दिखाई देता है। उनके समय के प्रसिद्ध कलाकारों में रामलाल, अलीरजा, हसन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

किशनगढ़ शैली

राजा सांवतसिंह का काल (1748-1764 ई.) किशनगढ़ शैली की दृष्टि से स्वर्णयुग कहा जा सकता है। सांवतसिंह नागरीदास के उपनाम से प्रसिद्ध थे।

इनके काव्य प्रेम, गायन, बणी-ठणी के संगीत प्रेम और कलाकार मोरध्वज निहालचन्द के चित्रांकन ने किशनगढ़ की चित्रकला को सर्वोच्च स्थान पर पहुँचा दिया।

बणी-ठणी को एरिक डिकिन्सन ने भारत की मोनालिसा कहा है।

किशनगढ़ शैली के चित्रकारों में नानकराम, सीताराम, सूरध्वज, मूलराज, मोरध्वज निहालचन्द, बदनसिंह, रामनाथ, सवाईराम, लालड़ी दास के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अजमेर शैली

भिणाय, सावर, मसूदा, जूनियाँ जैसे ठिकानों में चित्रण की परम्परा ने अजमेर शैली के विकास और संवर्द्धन में विशेष योगदान दिया।

जूनियाँ के चाँद द्वारा अंकित राजा पाबूजी का सन 1698 ई. व्यक्ति-चित्र इस शैली का सुंदर उदाहरण है।

- वृद्धावस्था के चित्रों को नागौर के चित्रकारों ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक चित्रित किया है। पारदर्शी वेशभूषा नागौर शैली की अपनी विशेषता है।
- जैसलमेर शैली का विकाश मुख्य रूप से महारावल हरराज, अखैसिंह एवं मूलराज के संरक्षण में हुआ। मूमल जैसलमेर शैली का प्रमुख चित्र है।

हाड़ौती शैली

बूंदी शैली, कोटा शैली, झालावाड़ शैली आदि को हाड़ौती शैली के अंतर्गत माना जाता है।

बूंदी शैली

चित्रकला की बूंदी शैली मेवाड़ चित्रकला से प्रभावित थी। राव शत्रुशाल (छत्रसाल) हाडा के काल में इस शैली का विशेष रूप से विकास हुआ।

राव छत्रसाल ने प्रसिद्ध रंगमहल बनवाया जो सुंदर भित्ति चित्रों के लिए विश्व प्रसिद्ध है। चित्रशाला का निर्माण राव उम्मेदसिंह के समय में हुआ। राव उम्मेदसिंह का जंगली सूअर का शिकार करते हुए बनाया चित्र (1750 ई.) प्रसिद्ध है।

बूंदी शैली में पशु-पक्षी चित्रण को विशेष महत्त्व दिया गया है।

इस शैली के चित्रकारों में सुरजन, अहमदअली, रामलाल श्री किशन और साधुराम मुख्य थे।

कोटा शैली

कोटा चित्रशैली का स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने का श्रेय महाराव रामसिंह (1661-1705 ई.) को है।

इस शैली का चरमोत्कर्ष उम्मेदसिंह के समय में हुआ।

घने जंगलों में शिकार की बहुलता के कारण कोटा शैली में इस समय शिकार का बहुरंगी वैविध्यपूर्ण चित्रण हुआ जो इस शैली का प्रतीक बन गया।

इस शैली के प्रमुख चित्रकार रघुनाथ, गोविन्दराम, डालू, लच्छीराम व नूर मोहम्मद हैं।

झालावाड़ शैली

झालावाड़ के राजमहलों में श्रीनाथजी, राधाकृष्ण लीला, रामलीला, राजसी वैभव के जो भित्ति चित्र मिलते हैं, उनके माध्यम से झालावाड़ शैली का निर्धारण होना अभी शेष हैं।

ढूँढ़ाड़ शैली

आमेर शैली

आमेर शैली के प्रारम्भिक काल के चित्रित ग्रंथो में यशोधरा चरित्र (1591ई.) नामक ग्रन्थ प्रमुख है।

इसी समय में बनी रज्मनामा (1588 ई.) की प्रति अकबर के लिए जयपुर सूरतखाने में ही तैयार की गई थी। इसमें 169 बड़े आकार के चित्र हैं एवं जयपुर के चित्रकारों का भी उल्लेख मिलता है।

मिर्जा राजा जयसिंह ने रसिकप्रिया और कृष्ण रूक्मिणी नामक ग्रन्थ अपनी रानी चन्द्रावती के लिए सन 1639 ई. में बनवाए थे। इसमें कृष्ण और गोपियों का युगल स्वरूप लोक शैली में चित्रित है।

जयपुर शैली

महाराजा सवाई जयसिंह प्रथम ने अपने राजचिन्हों, कोषों, रोजमर्रा की वस्तुएं, कला का खजाना, साज-सामान आदि को सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने हेतु छत्तीस कारखानों की स्थापना की, जिनमें सूरतखाना भी एक है।

महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह के समय साहिबराम ने बड़े व्यक्ति चित्र (आदमकद-पोट्रेट) बनाकर चित्रकला में नई परम्परा डाली।

लालचंद ने जानवरों की लड़ाइयों के अनेक चित्र बनाए।

सवाई माधोसिंह प्रथम के समय कलाकारों ने चित्रों में रंगों को न भरकर मोती, लाख तथा लकड़ी की मणियों को चिपकाकर रीतिकालीन अलंकारिक मणिकुट्टीम प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया।

महाराजा सवाई रामसिंह ने कला के विकास के लिए महाराजा स्कूल आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स की सन 1857 ई. में स्थापना की, जो वर्तमान में राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्स के नाम से जाना जाता है।

जयपुर के भित्ति-चित्रों की एक विशेष पद्धति है जिसे स्थानीय भाषा में आलागीला, आराइश तथा मोराकसी कहा जाता है। इस पद्धति में चूने के तैयार पलस्तर को घोट कर चिकना कर लिया जाता है तथा इस पर चित्रण किया जाता है।

अलवर शैली

अलवर शैली सन 1775 ई. में जयपुर से अलग होकर राव राजा प्रतापसिंह के समय में स्वत्रंत अस्तित्व में आयी।

राजगढ़ के महलों में शीशमहल का चित्रण कराकर बख्तावरसिंह ने यहाँ चित्रकला की शुरुआत की। बलदेव, डालूराम, सालगा एवं सालिगराम उनके राज्य के प्रमुख चितेरे थे।

महाराजा मंगलसिंह के शासनकाल में मूलचंद तथा उदयराम ने विशेषतः हाथीदांत के फलकों पर सूक्ष्म चित्रण किया।

अलवर चित्र शैली में ईरानी, मुगल और राजस्थानी विशेषतः जयपुर शैली का आश्चर्यजनक संतुलित समन्वय देखा जा सकता है। इस चित्र शैली में पुरुषों के मुख की आकृति आम की शक्ल में बनाई गई है।

उणियारा शैली

नरूका ठिकाने के वंश ने इस शैली के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। रावराजा सरदारसिंह ने धीमा, मीरबक्स, काशी, रामलखन, भीम आदि कलाकारों को आश्रय प्रदान किया।

उणियारा शैली पर बूंदी और जयपुर का समन्वित प्रभाव दिखाई देता है।

***सहायक आचार्य**
चित्रकला विभाग
एस.एस.जैन सुबोध बी.एड कॉलेज
जयपुर (राज.)